यदि ज्ञानी पुरुषोंका चित्त केवल अपनेही सुखमें निरत होय तो अन्य प्राणी संसार के दुःखसे दुःखित होकर किसकी शरण में जायँगे अर्थात्-ज्ञानीपुरुष परोपकारार्थ परोपदेश करनेके लिये भी उद्यत रहते हैं॥ ९॥

तज्ज्ञानं स च शास्त्रार्थस्तद्विज्ञानमखण्डितम्॥ सच्छिष्याय विरक्ताय साधो यदुपदिश्यते॥१०॥

हे साधो! वही ज्ञान, वही शास्त्रार्थ और वही अखण्ड आत्माका अनुभवहै, जोकि-सांसारिकमोहसे विरक्त श्रेष्ठशिष्य के प्रति उपदेश किया जाय॥ १०॥

उपदेशक्रमोराम व्यवस्था-

मात्रपालनम्॥ज्ञप्तेस्तु कारणं शुद्धा शिष्यप्रज्ञैव केवलम्॥ ११॥

हे रामचन्द्र! उपदेशका क्रमकेवल मर्यादा का पालन करना है, और परमात्मा के ज्ञान का कारण तो केवल शिष्य की पवित्र बुद्धि ही है, अर्थात्—निर्बुद्धि शिष्यको उपदेश करना वृथा है॥ ११॥

न शास्त्रैर्नापि गुरुणा दृश्यते परमेश्वरः॥ दृश्यते स्वात्मनैवात्मा स्वया सत्वस्थया धिया॥

परमात्मा का दर्शन केवल शास्त्र और गुरुसे नहीं होता, किन्तु सतोगुण में स्थित रहने वाली अपनी बुद्धिके द्वारा आत्माका मनन करनेसे ही आत्माका दर्शन होताहै॥

सर्वैव हि कला जन्तोरनभ्या-
सेन नश्यति ॥ इयं ज्ञानकला
राम सकृज्जाताभिवर्द्धते ॥१३॥

हे राम! प्राणियों की अन्य समस्त कलाएँ विना अभ्यास करे नाश को प्राप्त होजाती हैं परन्तु यह ज्ञानरूप कला एकवार भी प्राप्त होजाने से वृद्धि ही को प्राप्त होती है अर्थात्–यथार्थज्ञान का लेशमात्र भी वृद्धि ही को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

स्वकण्ठेऽपि स्थितं वस्तु यथा
नप्राप्यते भ्रमात्॥भ्रमान्तेप्राप्यते
तद्वदात्मापि गुरुवाक्यतः ॥१४॥

जिसप्रकार अपने कण्ठ में स्थितहुई

मालादिक वस्तु भ्रम से नहीं मिलती, और भ्रमका विनाश होजानेपर (वस्तु) मिल जाती है, इसीप्रकार गुरुओंके उपदेशसे आत्माकी प्राप्ति होजाती है ॥ १४ ॥

स्वस्वरूपमजानन्वै जनोऽयं दैववर्जितः ॥ विषयेषु सुखंवेत्ति पश्चात्पाके विषान्नवत् ॥ १५ ॥

भाग्यहीन यह समस्तप्राणी अपने२रूप को भूलकर विषयों में सुख मानतेहैं, परन्तु पीछे से यह विषयसुख विषयुक्त अन्नकी समान दुःखदायी हैं ॥ १५ ॥

बुद्ध्वाप्यत्यन्तनैरस्यं यःपदार्थेषु दुर्मतिः॥ बध्नाति भावनांभूयोनरोनासौ सगर्दभः ॥ १६ ॥

जो मन्दमति विषय भोगादि पदार्थों को निरस जानकर भी उनको भोगने की इच्छा करता है वह मनुष्य नहीं (विषयासक्त होनेके कारण) गर्दभ की समानहै॥

यत्किञ्चिदपि सङ्कल्पान्नरो दुःखे निमज्जति॥ न किञ्चिदपि संकल्पात्सुखमक्षयमश्नुते ॥ १७ ॥

मनुष्य अत्यन्त न्यून भी संकल्पसे दुःख भोगता (अर्थात्–सांसारिकभोगों में लिप्त होकर नरकगामी होता) है, और यदि संकल्प कुछभी न करै तो अक्षयसुख (परम पदमोक्ष) को प्राप्त होता है(क्षये संकल्पजालस्य जीवो ब्रह्मत्वमाप्नुयादिति श्रुतेः)॥

यथा स्वप्ने मुहूर्त्तें स्यात्सम्वत्सर-
शतभ्रमः॥ तथा मायाविलासो-
ऽयं जायते जाग्रतोभ्रमः॥ १८॥

जैसे स्वप्न देखते समय एकमुहूर्त्तमात्रमें सैकडों वर्षोंका भ्रम होजाता है, इसीप्रकार जाग्रत् अवस्थामें यह मायाका विलास प्रपंच रूप मृगतृष्णा नदी की समान प्रतीत होने लगता है॥ १८॥

योन्तःशीतलया बुद्ध्या रागद्वेष
विमुक्तया॥ साक्षिवत्पश्यतीदं हि
जीवितं तस्य शोभते॥ १९॥

जो मनुष्य आन्तरीय रागद्वेष से रहित शान्तबुद्धि के द्वारा इस संसार को साक्षी

भूतले। दुःखाय स्वशरीरोत्थं मौ-
र्ख्यमेतद्यथा नृणाम् ॥ २७ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठसारे वैराग्यप्रकरणं
समाप्तम् ॥ १ ॥

मनुष्यों को उन्हीं के शरीर से उत्पन्न हुई व्याधियें विष और सन्ताप तथा और कुछ भी भूमि के ऊपर ऐसा दुःखदायी नहीं होता, जैसा कि-आत्माका न जानना दुःख देता है ॥ २७ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठसारे व्रजरत्नभट्टाचार्यकृत-
भाषाटीकायां वैराग्यप्रकरणं समाप्तम्॥ १॥

जगन्मिथ्यात्ववर्णनं नाम
द्वितीयंप्रकरणम्

श्रीवसिष्ठउवाच॥संयमान्मनसः

शान्तिमेति संसारविभ्रमः॥ मन्दरे स्पन्दतां याते यथा क्षीरमहार्णवः॥ १॥

जगन्मिथ्यात्ववर्णन नाम द्वितीयप्रकरण॥

वसिष्ठजी बोले। मनकावेग रोकनेसे संसाररूपभ्रम इसप्रकार नष्टहोजाताहै जैसे मन्दराचल पर्वतके अचलहोकर स्थिरहोजानेपर क्षीरसागरकी लहरेंनाशहोगईथीं।

चित्तोन्मेषनिमेषाभ्यां संसारस्योदयक्षयौ॥ वासनाप्राणसंरोधादनिमेषं मनः कुरु॥ २॥

मनके रहने से संसारका उदय और चित्त के नाश से संसार का भी नाश होजाताहै अतएव वासना और प्राणों का

निरोध करके मनको संकल्प रहित करो।।

अयं हि स्वविकल्पोत्थः स्वविकल्पपरिक्षयात्॥ क्षीयते दग्धसंसारोनिःसारइत्यसंशयः३

यह संसार अपने ही मनके संकल्प से उत्पन्न होता और उसके नाशसे यहभी नाशको प्राप्त होजाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ३ ॥

परिज्ञानेन सर्पत्वं चित्रसर्पस्य नश्यति॥ यथा तथैव संसारः स्थित एवोपशाम्यति ॥ ४ ॥

जैसे चित्रलिखित सर्प के ज्ञानमात्र हीसे उसका सर्पत्व नाश होजाताहै,ऐसे ही आत्मज्ञान होजाने से संसार का भी

नाश होजाता है, अर्थात्--जैसे चित्रलिखित सर्प वास्तव में सर्प नहीं, ऐसेही संसारभी वास्तव में कुछ नहीं॥ ४॥

पुंसोनिजमनोमोहकल्पितोदुःखदः स्मृतः॥ संसारचिरवेतालो विचारेण विलीयते॥ ५॥

अपनेही मनके मोह से उत्पन्न हुआ यह संसाररूप पुराना वेताल पुरुषोंको दुःखदायी कहागया है, और यह वेताल आत्मविचारसे नाशहोजाताहै॥ ५॥

ईदृशी राम मायेयं या स्वनाशेन हर्षदा॥ न लक्ष्यते स्वभावोऽस्याः प्रेक्ष्यमाणैव नश्यति६

हे राम! यह माया ऐसी विलक्षण है

जो अपने नाश (आत्मज्ञान) होनेपर आनन्द देती है। इसका स्वभाव भी विदित नहीं होता, क्योंकि–जो देखते२ ही नाशको प्राप्त होजाती है ॥ ६ ॥

अहो नु चित्रा मायेयं तात विश्वविमोहिनी ॥ सर्वांगप्रोतमप्यात्मा ययात्मानं न पश्यति ॥

हे तात राम ! यह माया ऐसी विचित्र और संसार को मोहित करने वाली है कि–समस्त अंगों में व्याप्त हुएभी आत्माको प्राणी इसी माया करके नहीं देखता (अर्थात्–आत्मा को नहीं जानता) ॥ ७ ॥

यदिदं दृश्यते किञ्चित्तन्ना-

स्ति किमपि ध्रुवम् ॥ यथा गन्धर्वनगरं यथा वारिमरुस्थले८

जो कुछ यह (संसार) दीखता है यह सब इस प्रकार मिथ्याहै, जैसे गन्धर्वनगर, और मरुदेश में जलका भ्रम मिथ्या है ॥ ८ ॥

यत्तु नो दृश्यते किञ्चिदन्तस्थमपि किञ्चन ॥ अविनाशं तदस्तीह तत्सदात्मेति कथ्यते९

जो अन्तःकरण में स्थितभी है तथापि कुछ नहीं दीखता, केवल वही एक अविनाशी है और उसी को आत्मा कहतेहैं ॥ ९ ॥

स्वज्ञाने दर्पणे स्फारे समस्ता

वस्तुजातयः ॥ इमास्ताः प्रति-
बिम्बन्ति सरसीव तटद्रुमाः॥१०

आत्मज्ञानरूप दर्पण में यह समस्त वस्तुएँ इस प्रकार प्रतिबिंबित होरहीहैं जैसै तट के वृक्षों का सरोवर में प्रति-बिंब पड़ता है, अर्थात्–जैसे वास्तव में सरोवर में वृक्ष नहीं हैं ऐसेही ज्ञान होजाने पर कोईभी वस्तु नहीं रहती १०

सर्गश्चित्स्पन्दमात्रात्मा स-
म्यग्दृष्टौ विलीयते ॥ उदेत्यस-
म्यग्दृष्टौ तु रज्जौ सर्पभ्रमोयथा॥

यह समस्तसृष्टि जो है चैतन्यस्वरूप आत्मा का ही विलास है, भली भांति ज्ञान होजाने पर सब लय होजाता है.

और अज्ञानदशा में इस प्रकार प्रतीत होने लगता है जैसे रज्जु में सर्प का भ्रम होता है ॥ ११ ॥

भोगवासनया याति बन्धो-
दार्ढ्यमवस्तुजः ॥ तयोपशान्त-
या याति बन्धोजगति तानवम्॥

भोगकी इच्छा करनेसे धन आदि मिथ्या वस्तुजनित यह बन्धन दृढ होता है, और भोगकी वासनाके शान्त होजाने पर संसार बन्धनभी विनष्ट होजाताहै।

मनः सम्पद्यते तस्मान्महतः
परमात्मनः ॥ सुस्थिरादस्थिरा-
कारं तरंगइव वारिधेः ॥ १३ ॥

निश्चल परमेश्वर से चंचल मन इस प्रकार उत्पन्न होता है जैसे स्थिरसागर से चंचल लहरें उत्पन्न होती हैं ॥ १३ ॥

यत्स्वयं स्वैरमेवाशु संकल्पं याति नित्यशः॥ तेनेयामिन्द्रजालश्रीर्जगती प्रवितन्यते ॥१४॥

यह चपल मन मनमाने नित्य जो २ संकल्प करता है, उसी (संकल्प) से यह संसाररूप इन्द्रजाल (बाजीगरी) विस्तार को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

यथा बालस्य वेतालोमृतिपर्यन्तदुःखदः ॥ असदेव सदाकारं तथा मूढमतेर्जगत् ॥ १५ ॥

१ 'जाग्रतीत्यपि' पाठः ॥

जैसे—बेताल बालकों को मरण पर्यन्त दुःखदायी होता है, ऐसे ही अज्ञानी पुरुष को यह असत्यसंसार सत्य प्रतीत होकर दुःख देता है ॥ १५ ॥

अव्युत्पन्नस्य कनके कानके कटके यथा ॥ कटकव्यक्तिरेवा-स्ति न मनागस्ति हेमधीः १६॥

जैसे अज्ञानीपुरुष को सुवर्णनिर्मित कटक कुण्डलादिक—में कटक कुण्डलही का ज्ञान रहता है, सुवर्ण का ज्ञान कभी नहीं होता ॥ १६ ॥

तथाज्ञस्य पुरागारनगनागेन्द्र-गोचरम् ॥ इदं दृश्यदृगेवास्ति न त्वन्या परमार्थधीः॥ १७॥

ऐसेही—अज्ञानी पुरुषको नगर, घर, पर्वत और हाथीइत्यादिक सांसारिक वस्तुएँ दीखती हैं, और परमार्थबुद्धि कभी नहीं होती ॥ १७ ॥

अज्ञस्य दुःखौघमयं ज्ञस्यानन्दमयं जगत् ॥ अन्धं भुवनमन्धस्य प्रकाशन्तु सचक्षुषः १८

यह संसार अज्ञानी को तौ प्रभूत दुःखरूप और ज्ञानीको आनन्दस्वरूपहै। जैसे अन्धे पुरुषको संसार अंधा और नेत्रवालों को प्रकाशरूप दीखता है(अर्थात्—अज्ञानी तौ विषयसुख में लिप्त होकर दुःखपाताहै, और ज्ञानीपुरुष सांसारिक सुखोंको भोगता तौ है परन्तु उन में लिप्त नहीं होता अत·

एव उसको यथार्थ सुख मिलताहै ॥१८॥

यथा विशुद्धआकाशे सहसैवा-
भ्रमण्डलम् ॥ भूत्वा विलीयते
तद्वदात्मन्येवाखिलं जगत् १६॥

जिस प्रकार निर्मल आकाश में मेघा-
डम्बर उत्पन्न होकर तुरन्त नाश होजा-
ते हैं, इसीप्रकार विशुद्ध आत्मा में नि-
खिलसंसार उत्पन्न होकर नाश होजा-
ता है ॥ १६ ॥

आदित्याद्व्यतिरेकेण रश्म-
योयेन भाविताः ॥ आदित्य ए-
व ते तस्य निर्विकल्पः स उ-
च्यते ॥ २० ॥

जो किरणों को सूर्य से अभिन्न देख-

ता है, उस के लिये वे (किरणें) सूर्य ही हैं, इसी को निर्विकल्पज्ञान कहते हैं (अर्थात्-परमात्मा और संसार में अभेद देखने को निर्विकल्प ज्ञान कहते हैं) ॥ २० ॥

तन्तुमात्रोभवत्येव पटोयद्वद्विचारितः॥आत्मतन्मात्रमेवेदं तद्वद्विश्वं विचारितम् ॥ २१ ॥

जैसे विचार करनेसे वस्त्र केवल तन्तु मात्रही प्रतीत होने लगता है, ऐसेही विचार करे जाने से यह संसारभी आत्माही की तन्मात्रा अर्थात्-केवल आत्मा ही है ॥ २१ ॥

विश्ववीचिविलासोऽयं चित्सुधाब्धेरुदंचति ॥ विलीयते च

तत्रैवमध्ये कथमतन्मयम्॥२२॥

प्रथम तौ ब्रह्मरूप अमृत के समुद्रमें से संसाररूप लहरों का विलास उत्पन्न होता और पीछेसे उसी में लय होजाता है तौ फिर मध्यमें वह संसार ब्रह्मरूप क्यों न हो ॥ २२ ॥

यथा न तोयतो भिन्नाः फेनोर्मिजलबुद्बुदाः॥आत्मनो न तथा भिन्नं विश्वमात्मविनिर्गतम् २३

जिस प्रकार कि-फेन,लहरें, और जल के बुद्बुद जलसे भिन्न नहीं होते, ऐसे ही आत्मा से उत्पन्न हुआ यह संसार आत्मा से पृथक् नहीं है ॥ २३ ॥

आत्मनोऽपि तथा भिन्नमात्म-

न्येव लयं व्रजेत्॥मृदि कुम्भो-
जले वीचिः कनके कटकं यथा॥

ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ संसार ब्रह्मही में इस प्रकार लय होजाता है जैसे मृत्तिका में घट, जल में तरंगें, और कटकादिक सुवर्ण ही में मिलजाते हैं ॥ २४ ॥

आत्मज्ञानाज्जगद्भाति ह्यात्म-
ज्ञानान्निवर्त्तते ॥ रज्ज्वज्ञानाद-
हिर्भाति तज्ज्ञानाच्च निवर्त्तते॥

ब्रह्मका ज्ञान न होनेसे यह संसार भासता है, और आत्मज्ञान होजाने से इसप्रकार निवृत्त होजाता है, जैसे रस्सी का ज्ञान न होनेसे सर्प प्रतीत होताहै और रज्जु का ज्ञान होजानेसे भ्रम दूर होजाता है॥

तस्याद्दृश्यात्मतत्वस्य विस्मृत्यैव स्थितिं गतम् ॥ जगत्स्यादीश्वराद्रामभ्रमाद्रज्जुभुजङ्गवत्॥
हे राम ! परिश्रमसे जानने के योग्य जो आत्मज्ञान है तिस का विस्मरण होने से ही यह संसार स्थित है, और ईश्वर का ज्ञान होजाने पर इस प्रकार नष्ट होजाता है जैसे रज्जुका ज्ञान होजाने से सर्प का भ्रम नष्ट होजाता है ।२६॥

स्वप्नोजाग्रत्यसद्रूप स्वप्ने जाग्रत्यसन्मयम् ॥मृतिर्जन्मन्यसद्रूपा मृतौ जन्माप्यसन्मयम् २७
जाग्रत् अवस्था में स्वप्न, और स्वप्न में जाग्रत् अवस्था ऐसे ही जन्म में मृत्यु

और मृत्युमें जन्म असत्य प्रतीत होताहै॥

एवं न सन्नासदिति भ्रान्ति-
मात्रं विजृम्भते ॥ अनुभूयत ए-
वाशु किंचित्सर्वानुभूतितः॥२८॥
इतिश्रीयोगवासिष्ठसारेजगन्मिथ्यात्ववर्णनं
नाम द्वितीयं प्रकरणम्॥ २ ॥

इसी से यह जगत् सत् और असत् कुछ भी नहीं केवल भ्रान्तिमात्रही है। और साक्षात् ब्रह्मके अनुभव से ही नाना प्रकार का प्रतिभान होता है ॥ २८ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठसारे ब्रजरत्नभट्टाचार्यकृत-
भाषाटीकायां जगन्मिथ्यात्व-वर्णनं नाम
द्वितीयं प्रकरणम् ॥ २ ॥

जीवन्मुक्तलक्षणं नाम तृतीयंप्रकरणम्.

श्रीवासिष्ठ उवाच ॥ तत्वात्मबोधएवैकः सर्वाशातृणपावकः॥ प्रोक्तः समाधिशब्देन न तु तूष्णीमवस्थितिः ॥ १ ॥

जीवन्मुक्तलक्षण नाम तृतीय प्रकरण.

श्रीवासिष्ठ जी बोले—एक परमात्मा का साक्षात्कार ही सम्पूर्ण आशारूपी तृणों के लिये अग्नि की समान है, येही तृष्णा का दाहरूप ज्ञान समाधि कहाता है एकान्त में मौन होकर बैठ जानेका नाम समाधि नहीं है ॥ १ ॥

चिदाकारमिदं सर्वं जगदि-

त्येव भावयेत् ॥यास्तिष्ठत्युपशा-न्तस्थः स ब्रह्मकवचःसुखी ॥२॥

जो पुरुष इस जगत्को ब्रह्मरूपही देखताहै, और ऐसीही भावना से शान्त स्वरूप परमेश्वर में स्थितहै वही ब्रह्मरूप कवचसे भली प्रकार रक्षित होकर सुखी होताहै ॥ २ ॥

सर्वातीतपदालम्बी पूर्णेन्दु-शिशिराशयः॥ यास्तिष्ठति सदा योगी सएव परमेश्वरः ॥ ३ ॥

जो योगी सबसे परे ब्रह्म पदका अवलम्बन करने वाला और पूर्णचन्द्रमा की समान शान्तचित्त वालाहै वह योगी जन साक्षात् परमेश्वरही है ॥ ३ ॥

ब्रह्मोपनिषदान्तत्वं भावयन्यो-

न्तरात्मना ॥ नोद्वेगी नच तुष्टात्मा संसारे नावसीदति ॥ ४ ॥

जो अपने चित्तसे ब्रह्मप्रतिपादक उपनिषदोंका विचार करता २ उद्विग्न और सन्तुष्ट नहीं होता, वह संसार में दुःख नहीं पाता अर्थात्–उपनिषद् के विचार से सन्तुष्ट[1] होकर निवृत्त नहीं होना चाहिये ॥ ४ ॥

यथाग्निदीप्तं शैलंहि नाश्रयन्ति मृगद्विजाः ॥ तद्वद्ब्रह्मविदोदोषा नाश्रयन्ति कदाचन ॥५॥

जिस प्रकार मृग और पक्षी अग्नि से प्रज्वालित हुए पर्वत का आश्रय नहीं

१ राम चरित जे कहत अघाहीं।
रस विशेष जाना तिन नाहीं ॥

करते ऐसेही ब्रह्मज्ञानी को कामादिक दोष आश्रय नहीं करते ॥ ५ ॥

असन्तइव सन्तोऽपि कोपयन्ति परं नरम् ॥ निजकर्मगुणोदारपरिपाकं परीक्षितुम् ॥ ६ ॥

सन्त (ज्ञानी) भी असन्तों (अज्ञानियों) की समान दूसरे पुरुषों को क्रोधित करतेहैं, क्योंकि—अपने उदार कर्मोंके गुणकी परीक्षा करते हैं, तात्पर्य यह है कि—ज्ञानी पुरुषों को कर्म फल नहीं भोगना पड़ता अतएव अज्ञानी नर उन्हें देख के कुपित होतेहैं, और दुष्ट पुरुष अपने दुष्टाचरणों से दूसरों को क्रोधित करते हैं। ६ ॥

ज्ञात्वाप्यसर्पं सर्पात्थं यथा

कंपं न मुञ्चति॥विध्वस्ताखिल-मोहोऽपि मोहकार्यं तथात्मनि७

जैसे रज्जु को पीछे से वास्तव में रज्जु जानकरभी सर्प का भय दूर नहीं होता, ऐसेही प्राणी आत्मज्ञान के द्वारा समस्त मोह (अज्ञान) नष्ट होजाने परभी मोहकार्य (काम, क्रोध, लोभ, मोह,) को नहीं त्यागता ॥ ७ ॥

स्फटिकः प्रतिबिम्बेन यथा नायाति रंजनाम् ॥ तज्ज्ञःकर्म-फलेनान्तस्तथा नायाति रंजनाम्

जैसे स्फटिकमणि अन्य (पुष्पादि) के प्रतिबिम्ब से उसी के रंगवाला नहीं होता, ऐसेही ज्ञानीपुरुषका अन्तःकरण

कर्मों के फलसे लिप्त नहीं होता ॥८॥

अन्तर्मुखतया तिष्ठन् वहिर्वृ-
त्तिपरोऽपि सन्॥ परिश्रान्ततया
नित्यं निद्रालुरिव लक्ष्यते ॥९॥

वाह्य इन्द्रियों के विषय को ग्रहण भी करता हुआ आत्मज्ञान में निरत पुरुष थक जाने के कारण निद्रालु की समान प्रतीत होता है ॥ ९ ॥

अद्वैते स्थैर्यमायाते चित्ते च
प्रशमं गते॥ योगिनः कर्म कुर्व-
न्ति पश्यन्ति स्वप्नवज्जगत् १०

चित्तके शान्त होजाने से ब्रह्मज्ञान स्थिर होजाने पर योगीजन संसारको

स्वप्न की समान मिथ्या देखते हैं ॥१०॥

अद्यैव मरणं वस्तु कल्पान्तनिचयेन वा॥ तज्ज्ञः कलंकं नाप्नोति हेम पङ्कगतं यथा ॥११॥

चाहें आजही मृत्यु होजाय अथवा सैंकडों कल्पमें हो परन्तु ब्रह्मवेत्ता ज्ञानीपुरुष इसप्रकार बन्धन को प्राप्त नहीं होता जैसे–सुवर्ण कीचड में पडा कलुषित नहीं होता है ॥ ११ ॥

तनुं त्यजत वा काश्यां श्वपचस्य गृहेऽथवा॥ज्ञानसम्प्राप्तिसमये मुक्तोऽसौ विगताशयः १२

ज्ञानीपुरुष चाहें काशीपुरीमें शरीर त्यागै अथवा चाण्डाल के घरमें त्यागै, परन्तु–

यह तौ ज्ञान प्राप्त होने के ही समय वासनारहित हो मुक्त होजाता है ॥१२॥

गोष्पदं पृथिवी मेरुः स्थाणुराकाशमुद्रिका ॥ तृणं त्रिभुवनं राम! नैराश्यालंकृताकृतेः १३

हे राम! इच्छारहित पुरुषको भूमि गोष्पद सुमेरुपर्वत स्थाणु (स्तम्भ) और आकाश मुद्रिका (अँगूठी) के मध्यकी समान एवं त्रिलोकी तृणकी समान हो जाती है ॥ १३ ॥

अन्तः शून्योवहिः शून्यः शून्यकुम्भइवांवरे ॥ अन्तः पूर्णोवहिःपूर्णः पूर्णकुम्भइवार्णवे॥१४॥

जैसे आकाशके मध्य में घट शून्य ही

होता है ऐसेही–ज्ञानीपुरुष अन्तर और बाहरमें शून्यही है एवं आत्मज्ञानपरिपूर्ण होने के कारण बाहर और भीतर भी इस प्रकार परिपूर्ण होताहै जैसे समुद्र में घडा बाहर और भीतर पूर्ण होताहै ॥ १४ ॥

ईप्सितानीप्सितौ नस्तोयस्या-
न्तर्वस्तुदृष्टिषु ॥ यः सुप्तइव ह्या-
चरति समुक्तइति कथ्यते ॥१५॥

जिस पुरुषकी भली और बुरीवस्तु में इच्छा और अनिच्छा नहीं होती अतएव शयन करते हुए (निश्चेष्ट) की समान वर्त्ताव करताहै वही मुक्त कहा जाता है॥

निर्ग्रन्थिः शान्तसन्देहोजीव-
न्मुक्तः स्वभावतः ॥ अनिर्वाणो-

ऽपि निर्वाणश्चित्रदीपइव स्थितः॥

हार्दिक मोहरूप बन्धनोंसे रहित और संकल्प विकल्पात्मक सन्देहों का नाश हो जानेसे शान्त चित्तवालाभी जो पुरुष लोकदृष्टि में चित्रलिखित दीपक की समान स्थितहै, उसीको जीवन्मुक्त कहतेहैं ॥१६

अहंकारमयीं त्यक्त्वा वासनां लीलयैव यः॥ तिष्ठति ध्येयसंत्यागी जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥१७॥

जो पुरुष अहंकारजनित वासना को अनायास ही से त्याग देता और ध्येयवस्तुको भी त्याकर स्वयं ब्रह्मस्वरूप होकर

१ भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

स्थित होताहै उसीको जीवन्मुक्त कहतेहैं ॥

दूरे मुञ्चति बन्धुमन्धमिव यः सङ्गाद्भुजङ्गादिव,त्रासं नो विदधाति वेत्तिसदृशं रोगं च भोगं च यः॥ स्त्रैणेयस्तृणवद् घृणांप्रकुरुते मित्रेष्वमित्रेष्वपि स्वान्तं यस्यसमं समंगलमिहामुत्रापिमर्त्योऽश्नुते॥

जो पुरुष बन्धुवर्गको अन्धकूपकीसमान दूर ही से त्यागता है और जनसमुदाय से सर्प की समान डरता, और रोग तथा सुख भोग इन दोनों को समान जानता है, स्त्रियों के समुदाय को तृणकी समान जानके घृणाकरता एवं जिसका चित्त शत्रु और मित्रमें समानहै वही पुरुष इसलोक

और परलोक में आनन्द भोगता है (अर्थात्—इसलोक में सुख, और परलोकमें मोक्षको प्राप्त होजाताहै, उसीको जीवन्मुक्त कहतेहैं) ॥ १८ ॥

हृदयात्संपरित्यज्य सर्वं दृश्यं प्रशान्तधीः ॥ व्योमसौम्यतरोऽव्यग्रःस मुक्तःपरमेश्वरः॥१९

जो मनुष्य इस दीखते हुए मायाजालको हृदयसे दूर कर बुद्धिको शान्त करके आकाशकी समान मलरहित एवं शान्त होकर स्थित होता है वही परमात्माकी समान मुक्तस्वरूप है ॥ १९ ॥

समाधिमथ कर्माणि माकरोतु करोतु वा ॥ हृदयेनास्तसर्वा-

शो मुक्तएवोत्तमाशयः॥ २० ॥

जिसने अपने चित्तसे समस्त आशाएँ दूर करदी हैं वह समाधि करै, अथवा कर्म करै या न करै परन्तु वह निर्मल अन्तः-करण होनेके कारण मुक्तस्वरूपही है॥

अनात्मन्यात्मधीर्बन्धस्त-न्नाशो मोक्षउच्यते॥ बन्धमो-क्षौ न विद्येते नित्यमुक्तस्य चा-त्मनः॥ २१॥

अनात्मापदार्थ (देहादिको) में आ-त्मबुद्धि समझना इसीका नाम बन्धनहै, और अनात्मा पदार्थोंमें आत्म बुद्धिके ना-शका नाम मोक्ष है, परन्तु-वास्तवमें आत्माका बन्धन और मोक्ष कुछ नहीं वह सदा मुक्तस्वरूप ही है। २१॥

दृश्यं नास्तीति बोधेन मनसो दृश्यमार्जनम् ॥ सम्पन्नं चेत्तदुत्पन्ना परा निर्वाणनिर्वृतिः॥२२॥

ज्ञानके द्वारा भ्रमका नाश होजानेसे दृश्यमान (संसार) कुछ भी नहीं । जब मन के सकाश से भ्रम दूर होजाताहै तौ परानिर्वृति(मोक्ष)ही प्राप्त होजाती है॥

न मोक्षो नभसः पृष्ठे न पाताले न भूतले॥ सर्वाशासंक्षये चेतः क्षयोमोक्ष इतीर्यते ॥ २३ ॥

हेराम ! मोक्ष वस्तु आकाश वा पाताल में तथा भूमिके ऊपर कहीं भी नहीं है,चित्तसे समस्त आशाओंके नाश होजा-

ने ही को मोक्ष कहते हैं ॥ २३ ॥

अनन्ते चिद्घनानन्दे निर्विकल्पैकरूपिणि ॥ स्थिते द्वितीयस्याभावात्कोबन्धः कश्च मुच्यते ॥ २४ ॥

अनन्त, चैतन्य और आनन्दस्वरूप तथा मिथ्या संकल्प विकल्प रहित एक रूप वाले परमात्मामें मन लगाकर स्थित होजानेपर दूसराकुछ नहीं रहता, तौ फिर बन्धन और मोक्ष किसका होय । २४ ॥

तस्माद्दुल्लासमात्रेण मनसोबन्धतां गते ॥ मनःप्रशमनोराम मोक्षएवावशिष्यते ॥ २५ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठसारे जीवन्मुक्तलक्षणं नाम तृतीयं प्रकरणम् समाप्तम् ॥ ३ ॥

हे राम ! इसकारण मनके विलासमात्र सेही मनका बन्धन[1] होजाताहै और मन की शान्तिही को मोक्ष कहतेहैं॥ २५॥

इति श्रीयोगवासिष्ठसारे व्रजरत्नभट्टाचार्यकृत-
भाषाटीकायां जीवन्मुक्तलक्षणं नाम
तृतीयं प्रकरणम्.

मनोलयं नाम चतुर्थं प्रकरणम्॥

वशिष्ठ उवाच॥ एषा स्वभावाभिमतं स्वतः संकल्प्य धावति॥ चेतसः स्वयमम्लाना सैवेह मनआत्मनः॥ १॥

मनोलयनाम चतुर्थ प्रकरण।

वशिष्ठजी बोले॥ अन्तःकरण की स्व-

1 मनएव मनुष्याणां कारण बन्धमोक्षयोः, इतिश्रुतेः।

खण्डित वृत्तिको मन कहते हैं वहीमन नानाप्रकारके संकल्पउत्पन्नकरके दौडताहै॥

एतस्मात् सर्वगाद्देवात्सर्वशक्तेर्महात्मनः॥विभावकल्पना शक्तिर्लहरीवोत्थिताम्भसः ॥ २ ॥

सर्वव्यापक सम्पूर्ण शक्तिमान् महात्मा परमेश्वरसे संसारकी रचनारूप शक्ति इस प्रकार उत्पन्न होतीहै जैसे—जलसे लहरियें उत्पन्न होजाती हैं ॥ २ ॥

अन्तः संकल्पसिद्धेयं संकल्पेनैवशाम्यति ॥ येनैव जायते तेन वह्निज्वालेववायुना ॥ ३ ॥

मानसिक संकल्प से जनित हुआ यह संसार संकल्पही से शान्त होजाता है,

क्योंकि—जो वस्तु जिस से उत्पन्न होती हैं उसीसे नाश होजाती हैं, जैसे—अग्निकी ज्वालाएँ वायु द्वारा उठकर उसीसे नाश होजाती हैं। (अर्थात्—यह संसार धनादिविषयक संकल्प से उत्पन्न होता और ब्रह्म विषयक संकल्पसे नाश होजाताहै) ३

मनोमुनैवाभ्युदितंमनागेवानवेक्षणत्॥स्वस्वप्ने मरणाकारं प्रेक्ष्यमाणं न विद्यते॥ ४॥

यदि आत्मविचार किंचिन्मात्रभी न किया जाय तौ यह मन इसी संकल्प से उत्पन्न होता है और जब ज्ञान की बुद्धि से देखो तौ इस प्रकार नाश

होजाता है जैसे–स्वप्न में अपना मरण प्रतीत होता है, और जाग जाने पर यह भ्रम दूर होजाता है (स्वप्न में मरणकी समान मनभी मिथ्या है ॥ ४ ॥

असम्यग्दर्शनं यत्स्यादनात्मन्यात्मभावनम् ॥ यद्वस्तुनि वस्तुत्वं तन्मनो विद्धि राघव॥५॥

हे राम ! अनात्मा (देहादिकों) में जो आत्माका ज्ञान करना है, इसको मिथ्याज्ञान कहतेहैं अवस्तु (संसार) को वस्तु समझनेही का नाम मन कहाताहै॥

अहं सोऽहमिदं तन्मे एताव-

१ज्यों सपने शिर काटतकोई।विन जागे दुखदूर न होई॥ त्यों विवेकजानित मनजानहु।होतज्ञान तेहिनाशप्रमानहु॥

न्मात्रकं मनः ॥ तदभावनमात्रेण विचारेण विलीयते ॥ ६ ॥

ये शरीर ही आत्माहै, और यह धनादिक मेरा है इस मिथ्याज्ञानही का नाम मन है। तिसके अभावरूप ज्ञान (संसार के मिथ्या जानने) से यह मन लय हो जाता है ॥ ६ ॥

उपादेयानुपतनं हेयैकान्तविवर्जनम्॥यदेतन्मनसोरूपं तद्बन्धं विद्धि नेतरम् ॥७॥

ग्रहण करनेके योग्य वस्तुका ग्रहण करना, एवं त्याज्य वस्तुओंका परित्याग करना (अर्थात्–यह ग्राह्य है, यह त्याज्य है) येही मनका रूपहै, इसे ही बन्धन

जानो (लिखाभीहै–मनएव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः) ॥ ७ ॥

मनोहि जगतां कर्त्ता मनोहि पुरुषः स्मृतः ॥ मनः कृतं कृतं कर्म न शरीरकृतं कृतम् ॥ ८ ॥

यह मनही संसारका कर्ताहै और मन ही पुरुषहै, जो कर्म मनसे किया जाताहै उसे ही कराहुआ समझो शरीरसे कराहुआ कर्म कराकर्म नहीं कहलाताहै ॥ ८ ॥

चित्तं कारणमर्थानां तस्मिन्सति जगत्त्रयम् ॥ तस्मिन् क्षीणे जगत्क्षीणंतच्चिकित्स्यंप्रयत्नतः

समस्त पदार्थोंका यह मनही कारण है उसीके विद्यमान् रहते त्रिलोकी प्रतीत

होती है, एवं मनका नाश होजाने पर संसारभी क्षय होजाताहै, अतएव यत्नसे मनोनिरोधका उपाय कर्तव्यहै ॥ ९ ॥

रामवासनया बद्धं मुक्तं निर्वासनं मनः॥ तस्मान्निर्वासनीभाव-माहराशु विवेकतः ॥ १० ॥

हेराम! विषयादि भोगकी वासना से तौ बन्धन होताहै तथा मनसे वासनादूर होजाने पर मोक्ष होजातीहै, इसी कारण ज्ञान के द्वारा मनकी वासनाको शीघ्र दूर करना चाहिये ॥ १० ॥

यथाभ्रलेखा शशिनं सौधलेपमसी यथा॥ दूषयत्येवमेवान्तर्नरमाशा पिशाचिका ॥ ११ ॥

हेराम ! आशारूपी राक्षसी मनुष्यों के अन्तःकरण को इस प्रकार आवरण करलेती है, जैसे—बादलोंकी कतार निर्मल चन्द्रमा को, और महलों को श्याही कलुषित करदेती है ॥ ११॥

अन्तर्मुखतया सर्वं चिद्वन्हौ त्रिजगत्तृणम् ॥ जुह्वतोऽन्तर्निवर्तेत राम चित्तादिविभ्रमः॥१२॥

हेराम ! सम्पूर्ण इन्द्रियों को संसार से हटाकर ज्ञानरूप अग्नि में त्रिलोकीको तिनकेकी समान भस्म करके मनुष्य के चित्त का समस्त भ्रम दूर होजाताहै॥१२

यदा न भाव्यते किञ्चिद्धेयोपादेयरूपवित् ॥ स्थीयते स-

कलं त्यक्त्वा तदा चित्तं न जायते ॥ १३ ॥

जब प्राणी यह वस्तु ग्राह्य है यह त्याज्यहै इस मिथ्या ज्ञानको त्यागकर उपाधि रहित स्थित होताहै, उस समय चित्त स्वयं ही लय होजाताहै ॥ १३ ॥

घोरं जाग्रन्मयं चित्तं मूढं स्वप्नव्यवस्थितम्॥शान्तं सुषुप्तिभावस्थं त्रिभिर्हीनं मृतं भवेत् ॥१४॥

यह चित्त जाग्रत् अवस्था में परमदुःसह (दुःखदायी) होता है स्वप्नावस्थामें मूर्ख की समान और सुषुप्ति अवस्था में शान्त होकर वर्तता है, तथा उक्त तीनों अवस्थाओं से रहित तुर्यावस्था में मन लय होजाता है ॥ १४ ॥

विलाप्य पंकं कतकं रजोप्सु-
नयति यथा ॥ तथात्मनि नये-
द्विद्वान्विलाप्य विलयं मनः १५

कतक (निर्मली) जैसे जल में से कीचड़ को दूर करके जलको निर्मल कर देती है, इसी प्रकार विद्वान् पुरुष ज्ञान द्वारा मन को आत्मा में लय करके आत्मा को शुद्ध करलेतेहैं ॥ १५ ॥

चित्तं जानीहि संसारं बन्ध-
श्चित्तमुदाहृतम् ॥ पादपः पवने-
नेव देहश्चित्तेन चाल्यते ॥ १६ ॥

चित्तही को संसार और बन्धन जानो, जैसे—पवन वृक्ष को चलायमान करदेती है, इसी प्रकार चित्त देहको चलायमान करदेता है॥ १६ ॥

हस्तं हस्तेन सम्पीड्य दन्तै-
र्दन्तांश्च पीडयन् ॥ अङ्गान्यंगै-
स्समाक्रम्य जयेदादौस्वकंमनः॥

प्रथम हाथोंसे हाथोंको रोककर दांतों को दांतोंसे एवं समस्त अंगों को उन्हीं उन्हींअंगोंसेकाबूमें करकेअपनेमनकोजीते।

चित्तमेकं न शक्नोति जेतुं स्वा-
तंत्र्यवर्जितः ॥ ध्यानवार्तां वद-
न्मूढः स किं लोके न लज्जते॥१८॥

जो मूर्ख ध्यानकी वार्ताको करता और स्वतन्त्रतासे चित्तको वसमें नहीं कर सक्ताहै क्या वह संसार में लज्जित नहीं होता (अर्थात्—चित्तको बिना जीते ध्यानकी वार्ता करना लज्जाकी बातहै)॥

एकएव मनोदेवो ज्ञेयः सर्वार्थसिद्धिदः ॥ अनेन विफलः क्लेशः सर्वेषां तज्जयं विना ॥ १९ ॥

यह मनही समस्त मनोरथोंका सिद्ध करनेवाला देवहै (क्योंकि–मनही के जीतनेसे सब सिद्धियें प्राप्त होतीहैं) इस कारण मनका जय विना किये अन्यसमस्त साधनोंके लिये परिश्रम करना वृथाहै॥

अनुद्वेगःश्रियोमूलमनुद्वेगात्प्रवर्त्तते ॥ जन्तोमनोजयादन्यस्त्रैलोक्यविजयस्तृणम् ॥ २० ॥

चित्तको शान्त रखना बस ये ही मोक्ष रूप लक्ष्मी की प्राप्तिका कारण है प्राणियों को मनका जय करनेके अतिरिक्त त्रैलो-

की की भी जयकरलेना तृणवत् है(अर्थात् चाहै त्रिलोकीका जय अनायासही से कर लिया जाय, परंतु—चित्तको जीतना महाकठिनहै) ॥ २० ।

सत्सङ्गोवासनात्यागोऽध्यात्मविद्याविचारणम्॥ प्राणस्पन्दनिरोधश्चेत्युपायामनसो जये ॥

सज्जनों का सत्संग करना, तृष्णा को परित्याग करदेना, एवं वेदांतविद्याका विचार और प्राणायाम करना, मनका जय करनेके लिये येही उपायहैं (अर्थात्-येही आचरण करनेसे मनका जय होताहै) २१

पूर्णे मनसि सम्पूर्णं जगत्सर्वं सुधारसैः ॥ उपानद्गूढपादस्य

ननु चर्मावृतैव भूः ॥ २२ ॥

मनकोजय करलेनेसे समस्त संसार शान्तिरूप अमृतरससे परिपूर्ण हुआ दीखताहै, ठीक कहाहै कि--पैरमें उपानह (जूता) पहरेहुए मनुष्यको भूमि चर्म से आच्छादित हुई सी दीखतीहै ॥ २२ ॥

नाहं ब्रह्मेति संकल्पात् सुदृढं बध्यते मनः ॥ सर्वं ब्रह्मेति संकल्पात्सुदृढं मुच्यते मनः॥२३॥

मैं ब्रह्मसे भिन्न हूं इस संकल्प से तो मनका दृढ बन्धन होताहै तथा दृश्यमान यह सब ब्रह्मही है इस संकल्प से मनकी भली प्रकार मुक्ति होजाती है२३

चित्ते त्यक्ते लयं याति द्वैत-

मैक्यञ्च सर्वतः ॥ शिष्यते तु परंब्रह्म शान्तं नित्यमनामयम्॥

मनको जीतलेने से द्वैत और अद्वैत यह दोनोंही भाव सर्वथा लय होजातेहैं और शान्तस्वरूप अविनाशी एवं उपाधि-रहित केवल एक ब्रह्मही शेष रहताहै २४

चिन्मात्रत्वं प्रयातस्य तीर्ण-मृत्योः सचेतसः॥ योभवेत्परमा-नन्दः केनासावुपमीयते॥ २५ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठसारे मनोलयंनाम - चतुर्थ प्रकरणम् ॥ ४ ॥

साक्षात् ब्रह्मरूप को प्राप्तहुए अतएव जरामरण रहित शान्तचित्त वाले ज्ञानीको जो परमानन्द प्राप्त होताहै उसको किसी

के समान नहीं कहा जासक्ता (अर्थात् वह लोकातीत आनन्द केवल ज्ञान से ही अनुभव किया जासक्ताहै)॥२५॥

इति श्रीयोगवासिष्ठसारे व्रजरत्नभट्टाचार्यकृतभाषाटीकायां मनोलयं नाम चतुर्थं प्रकरणम्॥४॥

वासनोपशमनं नाम पंचमं प्रकरणम्

वसिष्ठ उवाच ॥ राम स्वात्मविचारोऽयं कोऽहं स्यामिति रूपकः॥चित्तादुद्रुमबीजस्य दाहार्थे दहनः स्मृतः ॥ १ ॥

वासनोपशमन नाम पंचम प्रकरण।

वसिष्ठजी बोले। हे राम! मैं कौनहूं इसप्रकार जो आत्मा का विचार करना है सो मन रूप दुःखदायी वृक्ष के वास-

नारूप बीजको भस्म करनेके लिये अग्नि है ॥ १ ॥

विचारोऽध्यात्मविद्यानां ज्ञानं तत्त्वविदोविदुः ॥ ज्ञेयं तस्यान्तरे वास्ति माधुर्यं पयसोयथा ॥२॥

तत्वज्ञानी पुरुष वेदान्तविद्याके विचार को ज्ञान कहतेहैं क्योंकि-जाननेके योग्य ब्रह्मरूप जो वस्तु है वह उसी के बीच में इसप्रकार विद्यमान् है जैसे-दूधके मध्य में मधुरता विद्यमान् रहती है ॥ २ ॥

विचारेण परिज्ञातः स्वभाव-स्योदितात्मनः ॥ अनुकम्प्या भवन्तीह ब्रह्मविष्णुशिवादयः ३

जिसने विचार के द्वारा ब्रह्मको जान

लिया है अतएव प्रकाशित आत्मा वाला मनुष्य इस लोक में ब्रह्मज्ञानी होने के कारण ब्रह्मा विष्णु और महादेव के ऊपर भी कृपा करने के योग्य होजाता है ३॥

किमिदं विश्वमखिलं किं स्या-
महामिति स्वयम्॥ विचारनिरत-
स्यैतदसदेव भवेज्जगत् ॥ ४ ॥

यह समस्त संसार क्या है और मैं कौन हूं ? ऐसा विचार करने वाले पुरुष के लिये यह संसार असत् (नाशवान्) ही होजाताहै ॥ ४ ॥

यस्य मौर्ख्यं क्षयंयाति सर्वं
ब्रह्मेति भावनात् ॥ नोदेति वा-
सना तस्य प्राज्ञस्याम्बुमतिर्मरौ॥

सब में ब्रह्मज्ञान होजाने से जिस का अज्ञान (द्वैतभावरूप) नाश होजाता है (अर्थात्–सर्वं खल्विदं ब्रह्म, ऐसा ज्ञान होजाताहै) उसकी सांसारिक सब कामनाएँ इस प्रकार उत्पन्न नहीं होतीं, जैसे–मरु देश में बुद्धिमान् को जल की कामना उत्पन्न नहीं होती ॥ ५ ॥

वासनासंपरित्यागाच्चित्तं गच्छत्यचित्तताम्॥ प्राणस्पन्दनिरोधाच्च यथेच्छसि तथा कुरु॥६॥

प्राणों का निरोध अर्थात्–प्राणायाम करने से वासना का नाश होता और वासना का विनाश होनेसे चित्तका भी निरोध होजाताहै, फिर जैसी इच्छा हो

वैसा करो (अर्थात्- जीवन्मुक्तको कर्मों का स्पर्श नहीं होता) ॥६॥

साधुसङ्गमसच्छास्त्रपरोभव-
सि सन्मते॥ तद्दिनैरेव नोमासैः
प्राप्नोसीमां परां धियम् ॥ ७ ॥

हेसुबुद्ध ! साधु सज्जनों के सत्सङ्ग और वेदान्तशास्त्रके विचारमें मन लगाओ सत्सङ्ग और अध्यात्मविचार करने पर महीनों में नहीं बल्कि थोड़ेही दिनों में ब्रह्मनिष्ठबुद्धि प्राप्त होजायगी ॥ ७ ॥

सत्संगव्यवहारित्वाद्भवभाव-
नवर्जनात्॥शरीरनाशदर्शित्वा-
द्वासना न प्रवर्त्तते ॥ ८ ॥

सज्जन ज्ञानी पुरुषोंका सत्सङ्ग कर-

ने से सांसारिक वासना निवृत्त होजा-
तीहै, औरवासना निवृत्त होजानेपर शरीर
नाशवान् प्रतीत होने लगताहै, अतएव
फिर कुछभी वासना उत्पन्न नहीं होती।८।

**दृढभावानुसन्धानाद्विमूढा अ-
पि राघव॥ विषं नयन्त्यमृतता-
ममृतं विषतामपि॥ ९॥**

हे रामचन्द्र! ब्रह्मरूप ज्ञान के अनुस-
न्धान (विचार) करनेसे अज्ञानीजन वि-
ष (अन्त में दुःखदायी संसार) को अमृत
(सुखदायी ब्रह्मरूप) को प्राप्त करदेते हैं,
और अमृतरूप विषय भोगों को विष की
समान कर देते हैं॥ ९॥

१ अर्थात्—जो प्रथम अज्ञानी और पीछेसे ज्ञा-
नी हुए हैं।

सत्यभावेन दृष्टोऽयं देहोदेही भवत्यलम् ॥ दृष्टस्त्वसत्यभावेन व्योमतां याति देहकाः ॥ १० ॥

इस देह को सत्यभावसे देखो तौ अतिशय देहोंका समुदाय प्रतीत होता है, और उसको यदि असत्यभाव (नाशवान्) देखा जाय तौ शून्य प्रतीत होताहै (अर्थात्-कुछभी शेष नहीं रहता) ॥ १० ॥

दिगन्तान्येन देहेन स्वप्नतल्पगतश्च त्वम् ॥ परिभ्रमसि हेराम स देहस्ते क्व सांप्रतम् ॥

हेराम! स्वप्नावस्था में शय्या के ऊपर सुखसे शयन करते हुए तुम जिस देहसे दिशाओं में चारों ओर भ्रमते फिरते हो

वो देह अब (जाग्रत् अवस्था में) कहांहै? अर्थात्-सभी कुछ स्वप्नकी समान नाशवान् है ॥ ११ ॥

देहोऽहमिति धीस्त्याज्या सर्वनाशेऽप्युपस्थिते॥चाण्डाली सश्वमांसेव स्पृष्टव्या नहि साधुना॥

चाहें समस्त का नाशभी उपस्थित हुआ हो परन्तु मुमुक्षुजन को देह में आत्मबुद्धि त्याग देनी चाहिये, जैसे-साधुलोग श्वान के मांसयुक्त चाण्डाली का स्पर्श नहीं करते, अर्थात्-त्याग देते हैं ॥ १२ ॥

ब्रह्मैक्यं भावयन्साधुः शान्तस्तिष्ठन् गतव्यथः ॥ ततस्तेसावहं भावस्स्वयमेव विनश्यति॥१३

जब मुमुक्षु पुरुष केवल एक ब्रह्महीका विचार करके समस्त दुःखसे रहित शान्त होकर बैठता है, उस अवस्था में देह के विषैं आत्मबुद्धि स्वयं नाश होजाती है ॥

सर्वत्रैक्यावबोधेन स्वस्थोऽन्तः शीतलः सदा ॥ निरहंकृतिराकाशः विशदस्तेन संस्मृतः ॥

सर्वत्र ही एक ब्रह्मज्ञान से अन्तःकरण में शान्त होकर अहंकाररहित निर्मल आकाश की समान होजाता है (अर्थात् ब्रह्मज्ञान के विना प्राप्तहुए देह में आत्मबुद्धि का नाश नहीं होता ॥ १४ ॥

अन्तःशीतलतायांतु लब्धा-

यां शीतलं जगत् ॥ अन्तस्ता-
पोपतप्तानां दावादाहमयं जगत्।
इति श्रीयोगवासिष्ठसारे वासनोपशमनं
नाम पंचमं प्रकरणम् ॥ ५ ॥

ब्रह्मज्ञानके द्वारा अन्तःकरण शीतल होजानेपर समस्त जगत् शीतलही प्रतीत होने लगताहै, और अन्तःकरण के सन्ताप से सन्तप्त होनेपर सारा संसार अग्निरूपही दीखताहै ॥ १५ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठसारे व्रजरत्नभट्टाचार्यकृत-
भाषाटीकायां वासनोपशमनं नाम
पंचमं प्रकरणं समाप्तम् ॥



आत्ममननं नाम षष्ठं प्रकरणम् ॥

शुद्धोनिरञ्जनोऽनन्तोबो-

धोऽहं प्रकृतेःपरः ॥ चेष्टमानामिमं देहं पश्याम्यन्यशरीरवत्॥१॥

आत्ममनननामषष्ठप्रकरण ॥

मैं शुद्ध मायारहित, अनन्त, और मायासे परे साक्षात् ज्ञानस्वरूप हूं, अतएव अनेक प्रकारकी चेष्टा करते हुए इस शरीरको दूसरेके शरीरकी समान देखताहूं॥

एते हि चिद्विलासान्तामनोबुद्धीन्द्रियादयः ॥ असन्तः सर्व एवाहो अवधानं विनास्थिताः २

यह मन बुद्धि अहंकार आदिक वास्तवमें सब असत्यहैं और ज्ञान न होनेके कारणही चित्तके विलास से उत्पन्नहोतेहैं २

आपद्यचलचित्तोऽपि जगन्मि-

त्रे च सम्पदि॥भावाभावविहीनोऽस्मि तेन जीवाम्यनामयम्॥३॥

विपत्ति में मेरा चित्त निश्चलभी है तथापि संपत्ति में संसारका मित्र हूं, एवं भाव और अभाव से रहित हूं अतएव दुःखरहित होकर जीताहूं॥ ३॥

निरीहोऽस्मि निराशोऽस्मि खवत्स्वस्थोऽस्मि निस्पृहः॥ शान्तोऽस्म्यहमरूपोऽस्मि चिरायुरचलस्थितिः॥ ४॥

मैं सांसारिक चेष्टा से रहित और तृष्णारहित हूं, अतएव आकाशकी समान तथा इच्छारहित हूं शान्ततथा रूप-

राहित चिरंजीवी (जरामरणरहित) तथा निश्चल हूं ॥ ४ ॥

चिदेव पञ्चभूतानि चिदेव भुवनत्रयम् ॥ विज्ञानमधुना सम्यगहमेव चिदेव हि ॥ ५ ॥

संप्रति ब्रह्मज्ञान होनेपर पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश यह पंचमहाभूत, त्रिलोकी सब साक्षात् ब्रह्म ही रूप होजाते हैं और मैं भी साक्षात् ब्रह्मरूपही हूं।

सर्वातीतः सर्वगश्च खमिवायमहं स्थितः ॥ यत्तदस्ति तदेवास्मि वक्तुं शक्नोमि नेतरत् ॥६॥

दृश्यमान सम्पूर्ण से भिन्न सर्वव्यापक एवं आकाश की सदृश स्थित वास्त-

विक जो ब्रह्म है वह मैं ही हूं; अपने को ब्रह्म से भिन्न कहना उचित नहीं॥ ६ ॥

मय्यनन्तचिदंभोधावाश्चर्यं जीववीचयः ॥ समुल्लसन्ति खेलन्ति प्रविशन्ति स्वभावतः॥७॥

यह अतीव आश्चर्य है कि—अपारज्ञान के समुद्ररूप मेरे विषें जीवरूप लहरें उत्पन्न होतीं, विलास करतीं और स्वाभाविक स्वयं ही लय को प्राप्त होजाती हैं (अर्थात्—लहरों की समान जीव भी स्वयं उत्पन्न होकर लय होजाते हैं)॥७॥

मय्यनन्तचिदंभोधौ विश्ववीच्यादि कल्पना ॥ उदेतु वास्तमाया तु न मे वृद्धिर्न मे क्षयः॥८

अनन्तज्ञान के सागररूप मेरे विषैं संसाररूप लहरियें चाहें उदय हों वा नाश हों उनके उत्पन्न होने से मेरी वृद्धि वा नाश होनेसे मेरा क्षय यह कुछभी नहीं है।

मदज्ञानोदितं विश्वं मय्येव लयमागतम् ॥ अपरोक्षचिदानन्दसाम्राज्यमधुनास्म्यहम्॥९॥

मेरे अज्ञान से उत्पन्न हुआ यह संसार आत्मज्ञान होजानेपर मुझ ही में लय होजाता है, अतएव सम्प्रति प्रत्यक्ष चैतन्यरूप जो आनन्द है वही ऐश्वर्यरूप मैं हूं ॥ ९ ॥

सर्वभूतान्तरस्थाय नित्यमुक्तचिदात्मने ॥ प्रत्यक्चैतन्यरू-

पाय मह्यमेव नमोनमः ॥१०॥

इति श्रीयोगवासिष्ठसारे आत्ममननं नाम षष्ठं प्रकरणम् ॥ ६ ॥

समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित, नित्यमुक्त तथा ज्ञानस्वरूप प्रत्येक शरीरों में विराजमान अतएव चैतन्य-स्वरूप मुझे ही नमस्कार है (अर्थात्-- समस्त में साक्षात् अविनाशी और सर्व-व्यापक ब्रह्म हूं इस हेतु मुझे ही नमस्कार है) ॥ १० ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठसारे व्रजरत्नभट्टाचार्य कृत-भाषाटीकायामात्ममननं नाम षष्ठं प्रकरणम् ॥ ६ ॥



आत्मनिरूपणं नाम सप्तमं प्रकरणम् ॥

वासिष्ठ उवाच॥देहिः कृत्रिमसं-

रम्भोहृदि संरम्भवर्जितः ॥ कर्ता बहिरकर्त्तान्तर्लोके विहर राघव॥१॥

आत्मनिरूपण नाम सप्तमप्रकरण ॥

वसिष्ठजीबोले—हे राम ! बाहर से कृत्रिम उद्यम को करते, और हृदय में उद्यमरहित होकर अतएव लोकदृष्टि में कर्त्ता एवं वास्तव में अकर्त्ता होकर संसार में बर्त्ताव करो ॥ १ ॥

अन्तः सन्त्यक्त सर्वाशोवीत-रागोविवासनः॥ बहिस्सर्वसमा-चारोलोके विहर राघव॥ २॥

हे राघव ! मनमें सम्पूर्ण आशाओं को त्याग के विषयाभिलाषा को छोड़कर अतएव समस्त वासना रहित होके तथा

संसार की दृष्टि में सम्पूर्ण कर्म करतेहुए की समान बर्ताव करो ॥ २ ॥

पूर्णांदृष्टिमवष्टभ्य ध्येय-त्यागविलासिनीम्॥ जीवन्मुक्त-तया स्वस्थोलोके विहर राघव ३

हे रामचन्द्र ! संसारका त्याग करदेने से शोभावाली पूर्णदृष्टि का अवलम्बन करके जीवन्मुक्त की समान स्वस्थहोकर मनुष्यलोक में व्यवहार करो ॥ ३ ॥

एकोविशुद्धमोहोऽहमिति नि-श्चयवह्निना ॥ प्रज्वाल्य द्वैत-गहनमेकएव सुखी भव ॥ ४ ॥

मैं सत्यज्ञानवान् एकही हूं ऐसे नि-श्चयरूप अग्नि के द्वारा द्वैत (मैं और हूं

और ब्रह्म और है इस अज्ञान) रूप बन-
को भस्म करके एकही रहकर सुखी बनो
(एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म इति श्रुतेः)॥४॥

देहोऽहं मानपाशेन दृढं बद्धोऽसि सर्वतः॥ बोधोऽहं ज्ञानखड्गेन तंनिकृत्य सुखी भव॥ ५॥

मैं देहहूं इस अभिमानरूप पाश(बन्धन) से तुम दृढ बँध रहे हो, इसी हेतु 'मैं ज्ञान रूप हूं' इस ज्ञानरूप खड्ग से उस अभिमानरूप बन्धन को छेदन करके सुखी होओ॥ ५॥

अनात्मनिरतिंत्यक्त्वा निर्विभागोजगत्स्थितौ॥ एकनिष्ठतयान्तस्थः सच्चिन्मात्रपरोभव

हे राम! अनात्मा (नाशवान्देहादि) वस्तुओं से अनुराग त्याग के संसारसे संबन्ध रहित होकर अन्तःकरण में एकाग्रचित्त होके सच्चिदानन्द परमेश्वर में तत्पर होजाओ ॥ ६ ॥

अजाग्रत्स्वप्ननिद्रस्य यत्ते रूपं सनातनम् ॥ सचेतनं विशुद्धञ्च तन्मयोभव सर्वदा ॥७॥

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंसे रहित जो शुद्ध चैतन्य सनातन तुम्हारा रूप है सदा उसीके विचार में तत्पर रहो (अर्थात्—उसीका रूपबनो) ७

मा भव ग्राह्यभावात्मा ग्राहकात्मा च मा भव ॥ भावनामखिलां

त्यक्त्वा यन्मयस्तन्मयो भव॥८॥

हे राम ! तुम ग्राह्य (ग्रहण करने के योग्य) और ग्राहक (ग्रहण करने वाले) यह कुछ भी मतबनो। सम्पूर्ण भावनाओंको त्यागकर साक्षात् ब्रह्ममय होजाओ॥

संकल्पेनैव संकल्पं मनसैव मनोमुने ॥ छित्वा स्वात्मनि तिष्ठति किमेतावति दुष्करम् ६

हे मुने (राम!) कर्त्तव्य रूप संकल्पसे संकल्प (कर्त्तव्येच्छा) को और मन के द्वारा मनको जीतकर आत्मामें निष्ठावाले

१ मनन (विचार) करने वाले को 'मुनि' कहतेहैं, अतएव वसिष्ठजीने 'राम'के लिये'मुने' सम्बोधन प्रयुक्त किया है।

बनो, आत्मामें निष्ठा होजानेपर कुछ भी दुष्कर नहीं है ॥ ९ ॥

कस्तवायं जडो मूको देहोभवति राघव ॥ यदर्थं सुखदुःखाभ्यामवशः परिभूयसे ॥ १० ॥

हे रामचन्द्र! जिसके लिये तुम परवश होकर सुख और दुःखसे सुखी और दुःखी होते हो, अचेतन तथा मूक इस देह से तुम्हारा क्या सम्बन्ध? (अर्थात्–कुछ भी नहीं) ॥ १० ॥

क मांसरुधिरादीनि क त्वं चैतन्यविग्रहः ॥ विजानन्नपि देहेऽस्मिन्नात्मबुद्धिं जहासि किम् ११

हे राम! कहां तो यह मांस रुधिरादिक

(अर्थात्–मांस रुधिर निर्मित शरीर) और कहां तुम साक्षात् चैतन्य ज्ञानस्वरूप ? (अर्थात् -तुम दोनों में बहुत अन्तर है) इस बातको जानकर भी देह में से आत्म-बुद्धि को क्यों नहीं त्यागते ॥ ११ ॥

एतावतैव देवेशः परमात्मावगम्यते ॥ काष्ठलोष्ठसमत्वेऽपि देहोऽयमवगम्यते ॥ १२॥

इस शरीरको काष्ठ और लोहकी समान (जड़) जानना, बस केवल इतने ही ज्ञानमात्रसे सबके स्वामी ब्रह्मरूपका बोध होजाता है ॥ १२ ॥

अहो नु चित्रं यत्सत्यं ब्रह्म तद्विस्मृतं नृणाम्॥यदसत्यमवि-

द्याख्यं तत्पुरः परिवल्गति॥ १३॥

अहो! यह बडी विचित्र और विचारणीय (आश्चर्य की) बात है कि–जो साक्षात् सत्यस्वरूप ब्रह्म है, मनुष्योंने उसको तो विसार दिया और जो असत्य अज्ञान है यह साक्षात् अगाड़ी प्रकाशवान् होरहा है॥ १३॥

अन्यच्चित्रं यत्परमं नृणां तद्ब्रह्म विस्मृतम्॥ यन्ममेदमविद्याख्यं तत्पुरः प्रवलायते १४॥

दूसरे यह और भी आश्चर्य है कि–परंब्रह्मको तो मनुष्योंने विस्मरण कर दिया, और ममतारूप अज्ञान प्रवलतासे वृद्धि को प्राप्त होरहा है॥ १४॥

सर्वं ब्रह्मेति यस्यान्तर्भावना सा विमुक्तिदा ॥ भेदबुद्धिरविद्येयं सर्वथा त्वं परित्यज ॥ १५ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठसारे आत्मनिरूपणंनाम सप्तमं प्रकरणम् ॥ ७ ॥

जिसके चित्तमें मुक्तिकी देनेवाली यह वासना है कि–दृश्यमान् यह सब ब्रह्म[1]ही ब्रह्म है (वह साक्षात् मोक्षस्वरूपहै) अतएव अज्ञान रूप भेद बुद्धि (द्वैतभाव) को सर्वथा त्याग देना चाहिये ॥ १५ ॥

इति श्रीयोगवासिष्ठसारे ब्रजरत्नभट्टाचार्यकृत
भाषाटीकायामात्मनिरूपणं नाम
सप्तमं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ७ ॥

---

१ "सर्वंखल्विदंब्रह्मनेहनानास्तिकिंचन" इतिश्रुतेः॥

आत्मार्चनंनामाष्टमं प्रकरणम् ॥

श्रीवसिष्ठउवाच ॥ यदिदेहं पृथक्कृत्य चिति विश्राम्यतिष्ठसि ॥ तदा तृणीकृताशेषः स्वयमेकोऽभविष्यसि ॥ १ ॥

आत्मार्चननाम अष्टमप्रकरण।

श्रीवसिष्ठजी बोले। हेराम ! यदि तुम देहको त्यागकर(अर्थात्—देह सम्बन्ध को त्यागके)चैतन्यरूप परमात्माके विषैं ज्ञान द्वारा विश्रामको प्राप्त होकर स्थित रहोगे तौ स्वयंही संसारको तृणवत् मानके अद्वितीय होजाओगे ॥ १ ॥

येनेदं वेत्सि तज्ज्ञात्वा कुरु प्रत्यङ्मुखं मनः॥ततःप्रकाशरूप-

त्वं द्रक्ष्यसि स्फुटमात्मनः ॥ २ ॥

जिस आत्माके द्वारा इस संसारका बोध होताहै उस (आत्मा) को जानकर मनको आत्मा में लगाओ, तब स्वयंही अपने आत्मरूपको स्पष्ट देखने लगोगे २

येन राष्ट्रं रसं रूपं गन्धं जानासि राघव ॥ तमात्मानं परंब्रह्म जानीहि परमेश्वरम् ॥ ३ ॥

हेराम ! जिसके द्वारा राज्य और रूप, रस, गन्ध, स्पर्शका ज्ञान करते हो, उसी आत्मा को परंब्रह्म परमेश्वर जानो ॥ ३ ॥

यत्र भावाःस्पन्दन्ते निर्मीयन्ते च येन वै ॥ तमेवात्मन आत्मानं जानीहि परमेश्वरम् ॥ ४ ॥

जिस आत्मामें भाव (पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशादिक) चेष्टा करते और उत्पन्न होते हैं, उसी आत्माको परमेश्वर जानो ॥ ४ ॥

यद्यज्ज्ञेयमिदं तत्वं नेति सन्त्यज्ययुक्तिभिः ॥ प्राप्यावशिष्टं चिन्मात्रं सोऽस्मि सोऽस्मीति भावय ॥ ५ ॥

जो२ यह सांसारिक तत्व जाननेके योग्य हैं यह युक्ति सम्मत नहीं, अतएव उन्हें त्यागके जो शेष रहै अर्थात्—चैतन्यरूप परमात्मा उसको प्राप्त होकर "सोऽहमस्मि" इसप्रकार विचार करो ॥ ५ ॥

ज्ञानं न भवतोभिन्नं ज्ञेयं ज्ञानात्पृथङ्नहि ॥ अतोन त्वित-

रत् किंचित्तस्माद्भेदो न विद्यते॥६॥

ज्ञान जो है वह तुम से भिन्न नहीं, और ज्ञाता (ज्ञानी पुरुष) ज्ञानसे पृथक् नहीं है अतएव अन्य कुछ नहीं है (अर्थात् सब ब्रह्म ही है) इसी लिये भेद नहीं समझना चाहिये॥६॥

ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्राद्यायद्यत्कुर्वन्ति सर्वतः॥तदहं चिद्वपुः सर्वं करोमीत्येव भावय॥७॥

हे राम! ब्रह्मा, विष्णु, महादेव और इन्द्रादिक देवता सदा जो कुछ (सृष्टिकी स्थिति पालन संहार आदि कार्य) करते हैं, तुम्हें यह समझना चाहिये कि—उस समस्त कार्य को चैतन्यस्वरूप साक्षात् मैं ही करता हूं॥७॥

अहं सर्वमिदं विश्वं परमात्मा-
हमव्ययः ॥ न भूतं नास्ति नो
भावी मत्तोन्यदिति भावय॥८॥

यह सम्पूर्ण विश्व मैं ही हूं; और अविनाशी परमात्मा भी मैं ही हूं, मुझ (ब्रह्म) से भिन्न और कुछभी न हुआ न है और न भविष्यत् में होगा,सदा ऐसाही विचार करना चाहिये ॥ ८ ॥

एकं ब्रह्म चिदाकारं सर्वात्मक-
मखण्डितम् ॥ निष्कम्पं भूरि
वाशेषमिति भावय यत्नतः॥९॥

यत्नपूर्वक केवलइसीका विचार करना चाहिये कि–अद्वितीय चैतन्यस्वरूप सर्वगत (सबका स्वरूप)एवं अविनाशी और

कम्परहित(अचल) तथा प्रभूत वा स्वल्प जो कुछ है यह सब ब्रह्म ही है ॥ ९ ॥

नाहं न चान्यद्वास्तीति ब्रह्मैवास्ति निरन्तरम् ॥ आनन्दपूर्णं सर्वत्रेत्यनुद्वेगादुपास्यताम् १०॥

मैं भी नहीं हूं तथा मुझसे भिन्न और कुछ भी नहीं है साक्षात् आनन्द से परिपूर्ण केवलनिरन्तर और सर्वत्र एक ब्रह्म ही है, उद्वेग (अस्थिरचित्तता) को त्याग कर ब्रह्म ही की उपासनाकरनी कर्त्तव्यहै॥

ग्राह्यग्राहकसम्बन्धे सामान्ये सर्वदेहिनाम् ॥ योगिनः सावधानत्वं यत्तदर्चनमात्मनः॥११॥

इति श्रीयोगवासिष्ठसारे आत्मार्चनं नामाष्टमं प्रकरणम् ॥ ८ ॥

संपूर्ण देहधारियों का ग्राह्य ग्राहक-भाव (सांसारिक व्यवहार) समान ही है, केवल योगियों में सावधानता (चित्त को स्थिर रखना) बस येही आत्माका पूजन है (अर्थात्-पुष्पादिकोंसे आत्मा का पूजन नहीं होता केवल चित्तको स्थिर रखना ही आत्मा का पुजन है)११

इति श्रीयोगवासिष्ठसारे व्रजरत्नभट्टाचार्यकृत-भाषाटीकायामात्मार्चनं नामाष्टमं प्रकरणम्.

आत्मानिरूपणं नाम नवमं प्रकरणम्

वसिष्ठ उवाच ॥ तस्मिन्देहेन्द्रियादीनां संघाते स्फुरति स्वतः ॥ अहं सोऽहमिति भावः स जीवोमलगुण्ठितः ॥ १ ॥

आत्मनिरूपण नाम नवम प्रकरण ॥

वसिष्ठजी कहने लगे । समस्त देह और इन्द्रियसमुदाय में यह मैंहूं, इस भाव से जो स्वयं प्रकाशित होताहै उसीको अज्ञानरूप.मलसे युक्तहूआ जीव जानो॥

सर्वमेव चिदाकाशं ब्रह्मेति घननिश्चये ॥ स्थितं याते शमं याति देहानिःस्नेहदीपवत् ॥२॥

चैतन्यरूप आकाशकी समान यह सब ब्रह्महीहै इस प्रकारके दृढज्ञानमें निश्चल स्थिति होजानेपर जीव इस प्रकार स्वयं लय होजाता है, जैसे--तैलरहित दीपक शान्त होजाता है (अर्थात्–तेल न रहने पर जिस प्रकार दीपकरूप तेज दीपक-

रूप को त्यागके महातेजरूप होजाता है, ऐसेही अज्ञान नाश होजाने पर जीव भी ब्रह्म रूप होजाता है) ॥ २ ॥

स्वमहत्वं यथोपेक्ष्य कश्चिद्वि-प्रोदुराहया ॥ अङ्गीकरोति शूद्र-त्वं तथा जीवत्वमीश्वरः ॥ ३ ॥

जैसे कोई ब्राह्मण अपने जातीय महत्व (गौरव) को त्यागकर(नीचसेवा आदि) दुष्ट कर्म करके शूद्रताको स्वीकार करलेता है, ऐसेही—ईश्वरभी आत्मा के अज्ञान से जीवत्वको प्राप्त होजाताहै, अर्थात् अज्ञान दृष्टि से ही जीव और ईश्वर में भेद है ॥ ३॥

असत्यमेव संकल्पभ्रमेणेदं शरीरकम् ॥ जीवः पश्यति मूढा-

त्मा बालोयक्षमिवोत्थितम् ॥४॥
जीवात्मा संकल्पके भ्रमसे अज्ञानी बनकर इस असत्य शरीरको इसप्रकार अपना जानता है, जैसे बालक बनावटी भूत को सत्य मानता है ॥ ४ ॥

मात्स्नैभके यथेभत्वं शिशुरध्यस्य वल्गति: ॥ अध्यस्यात्मनि देहादीन्मूढस्तद्वद्विचेष्टते ॥ ५ ॥
जैसे अज्ञानी बालक मट्टी के हाथी को सचमुचका हाथी जानकर चेष्टा करताहै, ऐसेही अज्ञानीपुरुष आत्मामें देहादिकोंको आरोपण करके चेष्टाकरताहै ॥५॥

चित्रसर्प: परिज्ञातोन सर्पभयदोयथा ॥ जीवसर्प: परिज्ञात-

स्तथा चान्ते न दुःखदः ॥ ६ ॥

जैसे चित्रलिखित सर्प यथार्थज्ञान होजाने पर सर्पका भय देने वाला नहीं रहता, ऐसेही जीवरूप सर्प ब्रह्मरूप ज्ञान होजाने पर दुःख नहीं देता ॥ ६ ॥

स्रजि सर्पोऽयमध्यस्तोमालायामेव लीयते ॥ आत्मनः प्रोत्थितोभेदआत्मन्येव विलीयते॥

जिस प्रकार माला के विषै भ्रम से सर्प का अध्यास उत्पन्न होताहै और मालाका साक्षात् ज्ञान होजानेपर मालाहीमें लय होजाताहै, ऐसेही आत्मा से भेद (द्वैतभाव) उत्पन्न होकर आत्माही में लीन होजाताहै ॥७॥

नैकमप्यङ्गदाद्यङ्ग यथैकं हे·

मसंस्थितम् ॥ उपाधिभिरनेको-ऽपि तथात्मैकः स्वरूपतः ॥ ८ ॥

कटक कुंडलादिक अनेक उपाधियोंके विषै वास्तवमें केवल एक सुवर्णही है, इसी प्रकार शरीररूप अनेक उपाधियोंसे भिन्न २ प्रतीत होता हुआ भी आत्मा एकही है ॥

शरीरेऽवयवायद्वद्विकाराश्च यथा मृदः ॥ अद्वैतं द्वैतवद्भाति तथा स्थावरजङ्गमम् ॥ ९ ॥

जैसे शरीरमें कर, चरण आदि अवयव और घट, शराव आदि मृत्तिकाके विकार शरीर मृत्तिकासे भिन्न प्रतीत होतेहैं, ऐसे ही अद्वैतब्रह्म स्थावर (वृक्षादिक) और जंगम (मनुष्यादिक) रूपसे द्वैतकी

समान भान होता है ॥ ९ ॥

मणितोयघृतादर्शेष्वेकमप्याननं यथा ॥ विभात्येकमिवात्मापि तथा धीष्वनुविम्बितः ॥१०॥

एकही मुख जैसे मणि, जल, घृत, और आदर्श (प्रतिविम्ब वा दर्पण) में अनेक प्रकारसे प्रतीत होताहै; इसीप्रकार आत्माभी नाना प्रकारकी बुद्धियोंमें प्रतिविम्बित होकर अनेकरूपसे प्रतीत होताहै (वास्तवमें एकहीहै) ॥ १० ॥

धूलिधूमाम्बुदैर्यद्वन्मलिनी क्रियते नभः ॥ परामृष्टस्तथैवात्मा विशुद्धः प्राकृतैर्गुणैः ॥ ११॥

निर्मल आकाश को जिस प्रकार धूलि

धूम, और मेघ मलीन करदेते हैं, इसी प्रकार शुद्ध स्वरूप आत्माभी प्रकृति (माया) के गुणों से युक्त होकर मलीन होजाताहै ॥

अग्निसङ्गाद्यथा लोहमाग्नित्वमुपगच्छति ॥ आत्मसंगात्तथा गच्छत्यात्मतामिन्द्रियादिकम्॥

अग्निकेसंसर्गसे जैसे लोहा भी अग्निरूपही होजाता है ऐसेही आत्माके संग से इन्द्रियादिकभी आत्माहीका रूप होजाते हैं ॥ १२ ॥

अदृश्योदृश्यते राहुर्गृहीतेन यथेन्दुना ॥ तथानुभवमात्रात्मा दृश्येनात्मावलोक्यते ॥ १३ ॥

जैसे राहु अदृश्यहै परन्तु–चन्द्रमाका

ग्रहण करनेसे दीखने लगताहै, ऐसेही अनुभवमात्रसे जाननेके योग्य आत्मा केवल आत्मज्ञानेंहीके द्वारा दीखताहै॥ १३॥

आत्मनोजडसंगः स्यादनात्मत्वं जडस्य तु॥स्यादात्मसंगादात्मत्वं जलाग्न्योः संगवन्मिथः॥

यदि परमात्माको देहादिक जडके साथ संयोग होजाय तौ आत्माभी जडही प्रतीत होने लगताहै तथा जड जो शरीर है उसका यदि आत्माके साथ संयोग होजाय तौ शरीरभी आत्मस्वरूपही प्रतीत होने लगताहै, जिस प्रकार कि—अग्नि के संयोगसे जलभी अग्निरूपही होजाताहै, एवं जलके संयोगसे अग्निभी शीतलहोजाताहै,

१ विमूढानानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः॥

वास्तव में सब भिन्नहैं ॥ १४ ॥

असत्यजडचित्तांशनयनाच्चि-द्वपुर्जनुः ॥ महाजलगतोऽप्यग्नि-रिव रूपं स्वमुज्झति ॥ १५ ॥

असत्य और जड़ चित्तके अंशसे चैत-न्यरूप शरीरको मनुष्य इसप्रकार त्याग देता है, जैसे जलसमुदाय में जाकर अग्नि अपने रूपको त्यागदेती है ॥१५॥

इक्षौ गुडस्तिले तैलं काष्ठे व-ह्निर्दृषद्ययः ॥ धेनावाज्यं वपुष्या-त्मा लभ्यते चैव यत्नतः ॥१६॥

जैसे गन्नेमें से रस, तिल में तेल,काष्ठमें अग्नि और पाषाण में लोह, एवं गौके विषै घी, यत्न करने से प्राप्त होता है, ऐसे ही

शरीर में वर्तमान आत्मा श्रवण मनन, निदिध्यासन आदि उपायोंसे प्राप्त होताहै॥

स्फटिकात्मनि नीरंध्रे स्थितं खं वीक्ष्यते यथा॥ तथा सर्वपदार्थेषु चिद्रूपः परमेश्वरः॥ १७॥

जिसप्रकार छिद्ररहित स्फटिकादि मणिमें आकाश स्थितहुआ दीखता है, इसी प्रकार समस्त पदार्थों में चैतन्य स्वरूप परमात्मा स्थित हुआ दीखताहै॥

वहिरन्तः स्फुरज्ज्योतिः रत्नकुम्भे प्रदीपवत्॥ स्वप्रकाशाद्यथैवैकं स्वरूपं ह्यात्मनस्तथा॥

जैसे रत्न के घट आदिमें रक्खा हुआ दीपक वाहर और भीतर सर्वत्र प्रकाश

करताहै ऐसेही बाह्य और मन आदि आभ्यन्तर विषयोंमेंभी प्रकाश करनेवाला होनेके कारण परमात्मा अद्वितीय स्वयं ज्योतिःस्वरूप है ॥ १८ ॥

दर्पणे विम्बितोह्यर्कः प्रकाशं कुरुते यथा ॥ तथा प्रकाशयत्यात्मास्वच्छधीष्वनुविम्बितः॥ १९॥

दर्पणादिमें प्रतिविम्ब पड़नेसे जैसे सूर्य अधिक प्रकाश करताहै ऐसेही निर्मल अन्तःकरणों में आत्माका प्रतिविम्ब (आदर्श) पड़ने से अधिक होताहै ॥ १६ ॥

यत्रास्थितेयं विश्वश्रीः प्रतिभामात्ररूपिणी॥ रज्जौ भुजंगवद्भातिस्वयमात्मासदोदितः२०

यह सांसारिक शोभा जिस परमात्मामें स्थित हुई केवल नाम मात्रहीकी शोभा ऐसे प्रतीत होतीहै, जैसे रज्जु में सर्प केवल नाममात्र प्रतीत होताहै, वही आत्मा साक्षात् प्रकाशस्वरूप है ॥२०॥

आद्यन्तरहितस्सत्यश्चिद्रूपो-
निर्विकल्पकः। आत्मानिरूपि-
ताकाशोजीवस्याद्यः परात्परः २१

यह आत्मा उत्पत्ति एवं विनाशरहित सत्य तथा चैतन्यस्वरूप और मायाजनित सन्देहों से भिन्न, आकाश का उत्पन्न करने वाला (तस्माद्वा एतस्मादात्मनआकाशः सम्भूतः, इति श्रुतेः) एवं समस्त जीवों से प्रथम आविर्भूत हुआ तथा सबसे परेहै॥

आत्मा विशुद्धचैतन्यस्वरूपः शाश्वतोविभुः। निर्विकारः स्वयंज्योतिः स्वभावोऽर्कप्रकाशवत्॥

वह आत्मा शुद्ध चैतन्य स्वरूप अविनाशी तथा सर्वव्यापक, माया के विकारों से रहित और स्वयं ज्योतिःस्वरूप है तथा उसकी सत्ता सूर्य की समान प्रकाशवान्है।

आत्मानुभवमात्रात्मा सर्वगः सर्वसंश्रयः। प्रकाशानन्यश्चैतन्याव्यतिरिक्तोऽनलोष्मवत् २३॥

आत्मा केवल अपने ही अनुभवसे जानने के योग्य, अग्निमें ऊष्मता (गरमाई) की सदृश सर्वत्र विद्यमान् (सर्वव्यापक) सबका आधार तथा साक्षात् प्रकाशस्वरू-

परब्रह्मस्वरूपवर्णन नाम दशम प्रकरण।

श्रीवासिष्ठजी महाराज कहने लगे ॥

देखनेके योग्य वस्तु और उसके दर्शन (अर्थात्–इन्द्रियजनित विषयके सम्बन्ध) से परम सुखकी प्राप्ति नहीं होती; एकान्त में स्थित हो 'ब्रह्माहमस्मि' ऐसे आत्मज्ञानके द्वारा मन के नाश होजानेको परमपद (मोक्ष) कहते हैं ॥ १ ॥

दृश्यदर्शनसंबन्धे सुखसम्वि-
दनुत्तमा ॥ दृश्यसंवलितोबन्ध-
स्तन्मुक्त्या मुक्तिरुच्यते ॥ २ ॥

इन्द्रियजन्य विषयोंके सम्बन्धमें जो उत्तम सुख प्रतीत होता है, इन्द्रियोंके विषयसे युक्त हुए उसी सुखको बन्धन कहते

हैं; इस बन्धनसे मुक्त होजानाही मुक्ति कहाती है ॥ २ ॥

शुद्धं सदसतोर्मध्ये सुखं लब्ध्वावलम्ब्य तत्॥सवाह्याभ्यन्तरं विश्वं मा ग्रहाण विमुञ्च मा॥३॥

जड़ और चैतन्यके मध्य में से शुद्ध चैतन्यस्वरूप परमात्माका अवलम्बन करके वाह्य और आभ्यन्तर दोनों वृत्तियोंसे इस विश्वका ग्रहण और परित्याग मत करो, अर्थात्–संसार त्रिकाल में असत्य है ऐसा समझो ॥ ३ ॥

जडाजडदृशोर्मध्ये यत्तत्वं परमार्थकम्॥ अनन्ताकाशहृदये तत्सदाश्रय सर्वदा ॥ ४॥

जड़ तथा चैतन्य के मध्य में, परमार्थ (मोक्ष)का देनेवाला आकाशकी समान अनन्त जो तत्व हृदय में सदा स्थित है उस सर्वव्यापक का सदा आश्रय लेना चाहिये ॥ ४ ॥

द्रष्टुर्दृश्यस्य सत्तांगबन्धइ-त्यभिधीयते॥द्रष्टुर्दृश्यवशाद्ब-न्धोदृश्याभावे विमुच्यते॥५॥

देखने वाले पुरुषका दीखते हुए पदार्थ के सङ्ग जो सम्बन्ध है,उसीको बन्धन कहते हैं, और दृश्यमान् संसारसे सम्बन्ध पृथक् होजानेपर प्राणी बंधन से मुक्त होजाता है ॥ ५ ॥

द्रष्टृदर्शनदृश्यानित्यक्त्वावा-

मनया सह॥दर्शनं प्रथमाभास-
मात्मानं समुपास्महे ॥ ६ ॥

द्रष्टा(देखनेवाला)दर्शन और दृश्य इन तीनों को वासना सहित त्यागकर आदिभूत तेजःस्वरूप आत्माकी हम उपासना करते हैं ॥ ६ ॥

द्वयोर्मध्यगतं नित्यमस्ति
नास्तीति पक्षयोः॥प्रकाशं च प्र-
काशानामात्मानं समुपास्महे७

जड और चैतन्य इन दोनोंके मध्यमें विराजमान् एवं सूर्यादिक प्रकाशमान् पदार्थोंके भी प्रकाशक,परमात्माकी उपासना करते[1] हैं ॥ ७ ॥

१ योऽसावादित्यः सोऽसावहम् ।
यआदित्ये तपतीति श्रुतेश्च ॥

निद्रादौ जागरस्यान्ते यो-
भावउपजायते ॥ तं भावं भाव-
यन्साक्षादक्षयानन्दमश्नुते ॥८॥

निद्राका क्षय होजाने पर जाग्रत् अवस्थाकी आदिमें जो सतोगुणीभाव उत्पन्न होताहै उसी भाव को विचार करते अक्षय आनंद को भोगना चाहिये ॥ ८ ॥

प्रशान्तसर्वसंकल्पा या शि-
लावदवास्थितिः ॥ जाग्रन्निद्रा वि-
निर्मुक्ता सास्वरूपास्थितिः परा ९

जिसके समस्त संकल्प शान्त होगये अतएव समस्त चेष्टा रहित शिलाकी समान जिसकी स्थिति है, जाग्रत् और निद्रा रहित वही उत्तमस्थिति कही गयीहै ९

जडतां वर्जयित्वैकां शिलाया-
हृदयञ्च यत् ॥ अमनस्कं मह -
बाहो तन्मयोभव सर्वदा ॥ १० ॥

अज्ञानका परित्याग कर हृदयकी स्थिति को शिलाकी समान व्यापाररहित बना के हेमहावाहो, रामचन्द्र ! मानासिकव्यापारको त्यागकर आत्माका मनन करनेमें तत्पर रहो ॥ १० ॥

सत्यानन्दचिदाकाशस्वरूपः
परमेश्वरः ॥ मृद्भाजनेषु मृदिव
सर्वत्रास्त्यपृथक् स्थितः ॥ ११ ॥

सत्य आनन्द और चैतन्यस्वरूपवाला आत्मा आकाशकी समान इसप्रकार सर्वत्र व्यापकहै, जैसे मृत्तिकाके पात्र में मृत्तिका सर्वत्र व्याप्त होतीहै ॥ ११ ॥

अपारावारविस्तारसंवित्सालि-
लवल्गुनैः॥ चिदेकार्णवएकोऽयं
स्वयमात्मा विजृम्भते॥ १२॥

जिसके परली पार और उर्ली पार न हों ऐसी सम्पत्ति रूप जलवाले सागर में स्नान करके चैतन्य समुद्रस्वरूप एक आत्मा प्रकाशित होरहाहै॥ १२॥

भरिताशेषदिक्कुंजमनन्ता-
काशनिर्भरम्॥ एकं वस्तु जग-
त्सर्वं चिन्मात्रं वारि वाम्बुधिः १३

समस्त दिशा कुंजों को व्याप्त करने वाले अनन्त तथा आकाशकी समान सर्वत्र विद्यमान् केवल एक चैतन्य स्वरूप ही सब जगत्है जैसे—समुद्र केवल जलस्वरूपही होताहै॥ १३॥

निरंशत्वाद्विभुत्वाच्च तथा नस्वरभावतः॥ ब्रह्मव्योम्नोनभेदोऽस्ति चैतन्यं ब्रह्मणोऽधिकम्॥

अवयव रहित होने और सर्वत्र व्यापक होने से तथा विनाश रहित होने के कारण आकाश और परमात्मा में कुछ अन्तर नहीं, बल्कि—परमात्मा चैतन्यहै यह उसमें अधिकताहै ॥ १४ ॥

निस्तरंगोतिगम्भीरः सान्द्रानंदसुधार्णवः॥ माधुर्यैकरसाधारएकएवास्ति सर्वदा॥ १५॥

स्थिर और अत्यन्तगम्भीर अतीव आनन्दरूप अमृत का समुद्र तथा मधुरतारूपरसका एकमात्र आश्रय वही परमात्मा सर्वत्र व्यापकहै ॥ १५ ॥

समस्तं खल्विदं ब्रह्म सर्वमात्मेदमागतम्॥ अहमन्यइदं वान्यदित्यखण्डं न खण्डय॥१६॥

यह समस्त संसार ब्रह्मऔर आत्मस्वरूपहीहै, यहसंसार तथा मैं भिन्न नहीं हूं इसज्ञान को दूर मत करो, अर्थात्-यह आत्मा और ब्रह्म दोनो एकहीहैं, तथा आत्माका संसारसे कुछसम्बन्धनहीं,इसप्रकार के अखण्डज्ञानकी वृद्धि करनी चाहिये १६

यदेव ब्रह्मणोरूपं ततं बुद्धमखण्डितम्॥तदा विस्तीर्णसंसारः परमेश्वरतांगतः॥ १७ ॥

जब यह बोध होगया कि-एक ब्रह्मही का रूप अखण्डित सर्वत्र व्याप्त है, उस

समय अत्यन्त विस्तार वाला भी यह संसार ब्रह्मरूपही दीखने लगता है अर्थात्–ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि में संसार असत्य होजाता है ॥ १७ ॥

समस्तमेव ब्रह्मेति भाविते ब्रह्म वै पुमान् ॥ पीतेऽमृतेऽमृतमयः कोनाम न भवेदिति ॥ १८ ॥

दीखते हुए जड वा चेतन यह सबही ब्रह्म हैं, इस प्रकार का ज्ञान होजाने पर प्राणी स्वयं ही ब्रह्मरूप होजाता है जैसे अमृत पान कर लेने से पान करने वाला भी साक्षात् अमृत स्वरूप ही होजाताहै।

भव्योऽसि चेत्तदेतस्मात्सर्वमाप्नोषि निश्चयात् ॥ न चेद्ब्रह्म-

१ जहां देखो वहां मौजूद मेरा कृष्णप्यारा है।

पि संप्रोक्तं त्वयि भस्मनि हूयते॥

हे राम ! यदि तुम ब्रह्मज्ञानी हो तो इस ब्रह्मज्ञानकेद्वारा निश्चय तुम्हें सबकुछ प्राप्त होगा और यदि ब्रह्मज्ञान नहीं है तो अत्यन्त उपदेश करना भी भस्म (राख) में होम करनेकी समान निष्फल है॥ १६॥

अपि विज्ञाततत्त्वेन त्वत्याभ्यस्यमिदं सदा॥ न नाममात्रात्कतकफलमम्बुप्रसादकम्॥ २०॥

तत्त्वज्ञान होजाने पर भी तुमको "अहंब्रह्मास्मि" इसका बारम्बार विचार करना चाहिये ; क्योंकि—कतक फलका नाम मात्रही लेनेसे जल निर्मल नहीं होता, अर्थात्—जैसे कतकको जलमें बिना

मिलाये जल निर्मल नहीं होता, ऐसेही तत्वज्ञान होजाने पर भी यदि आत्ममनन न करो तो मोक्ष नहीं होसक्ती ॥ २० ॥

यस्याभिमानो मोक्षेऽपि देहेऽपि ममता तथा ॥ न च ज्ञानी न वा योगी केवलं दुःखभागसौ ॥

जिस प्राणीको यह अभिमान है, कि-मेरी मोक्ष होजायगी, देहादिकमें ममता करता है, वह ज्ञानी अथवा योगी नहीं, बल्कि दुःखही का भोगनेवालाहै, अर्थात्-मुमुक्षुओं को देहादिकेविषैं ममत्व करना नहींचाहिये॥

हरोपियद्युपदेष्टा ते हरिःकमल-

१ जैसे बार २ हिलाके गाड़नेसे खूंटा अत्यन्त दृढ़ होजाता है, ऐसेही अत्यन्त विचारकरने से दृढ़-ज्ञान होता है ॥